अनुभव का आधार पाप प्रकर्ष है। इसलिए दुखानुभव का कारण पुण्य का उत्कर्ष नहीं अपितु पाप का प्रकर्ष है।

इस प्रकार अचलभ्राता का पुण्य-पाप सम्बन्धी सारा संशय जाता रहा। वह भी अपने ३०० विद्यार्थी शिष्यों के साथ तीर्थंकर प्रभु महावीर की शरण में आया। निर्ग्रन्थ प्रवचन सुना। प्रभु महावीर से दीक्षा की प्रार्थना की। प्रभु महावीर के सान्निध्य में वह भी अन्य मुनियों के साथ बैठ गया।

अब दो पुरोहित ही रह गए थे- मेतार्य व प्रभास। दोनों अपने शिष्यों के साथ प्रभु महावीर के पास आए। सर्वप्रथम मेतार्य स्वामी पधारे।

मेतार्य का संशय निवारण व प्रव्रज्या

अचलभ्राता की दीक्षा के बाद मेतार्य भी अपने ३०० शिष्य परिवार के साथ प्रभु महावीर के सामने आए। प्रभु महावीर ने उन्हें देखते ही कहा- "महानुभाव! तुम्हारे मन में परलोक के प्रति संशय है। इसका कारण 'विज्ञानधन' आदि श्रुति वाक्य है। यदि भूत परिणाम ही चैतन्य हो तो उनके विनाश के साथ ही उसका विनाश निश्चित है।

मेतार्य! तुम्हारा यह मानना है कि मद्यांग और मद की तरह भूत और चैतन्य में किसी प्रकार का भेद नहीं है इसलिए परलोक मानना जरूरी नहीं है। जब भूत संयोग के नाश से चेतना का नाश हो जाता है तो परलोक को मानने की जरूरत नहीं, इस तरह सर्वव्यापी एक ही आत्मा का अस्तित्व मानने पर भी परलोक की सिद्धि नहीं हो सकती।

मैं तुम्हें पहले बता चुका हूं भूत, इन्द्रिय आदि से पृथक् स्वरूप आत्मा का धर्म चैतन्य है। इस बात की सिद्धि मैं पहले कर चुका हूं। इसलिए आत्मा को भी स्वतन्त्र द्रव्य मानना चाहिए। इस तरह अनेक आत्मा का अस्तित्व भी पहले सिद्ध किया जा चुका है। इसलिए लोकालोक से अलग देव आदि परलोक का सद्भाव भी मौर्यपुत्र और अकम्पित की चर्चा में बता चुका हूं इसलिए परलोक का सद्भाव तर्कसंगत है। आत्मा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, स्वभावयुक्त है। इसलिए मृत्यु के बाद उसका सद्भाव सिद्ध है।"

संशय दूर होते ही मेतार्य भी अपने शिष्य परिवार सहित दीक्षित हो गया।

अब अन्तिम पुरोहित प्रभास अपने विद्यार्थी शिष्यों के साथ यज्ञशाला से चला था। उसे प्रभु महावीर पर श्रद्धा होने लगी थी। अतः वह भी प्रभु महावीर के समवसरण में अपने ३०० शिष्यों सहित पहुंचा।

प्रभास का संशय निवारण व प्रव्रज्या

आर्य प्रभास को देखते ही प्रभु महावीर ने उसके मन की बात कह डाली- "प्रभास! तुम्हारे मन में मोक्ष के प्रति संशय है?"

प्रभास- "हां महाराज! मुझे यही संदेह है। क्योंकि मोक्ष का अर्थ कर्म से मुक्त होना है तो यह असंभव है, क्योंकि जीव और कर्म का संबंध अनादि है उसे अनंत होना चाहिए। जो अनादि है वह अनन्त भी है, जैसे- आत्मा वेद में भी मोक्ष की कोई चर्चा नहीं है। शास्त्र में तो "जरामर्य व यद ग्निहोत्रेय"[१४] इत्यादि वचनों से जीवन पर्यन्त के लिए अग्निहोत्र ही विधेय कर्म लिखा है। यदि वास्तव में मोक्ष होता तो उसकी सिद्धि का कोई अनुसरण भी बताया जाता।"

प्रभु महावीर-"प्रभास! तुम्हारा यह कहना सही नहीं कि अनादि वस्तु अनंत होनी चाहिए। यह कोई शाश्वत नियम नहीं है। स्वर्ण खनिज पदार्थ अनादिकाल से मृतिका से संबंध होते हुए भी अग्नि के संयोग

में निर्मल हो जाते हैं। इस प्रकार जीव भी अनादिकाल से कर्मफल से सम्बन्ध होते हुए ज्ञान, दर्शन आदि उपकरणों की सहायता से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

यह हो सकता है कि कर्मकाण्ड प्रधान वैदिक ऋचाओं में मोक्ष व उसके साधन का उल्लेख न हो परन्तु वेद के ही अन्तिम भाग, उपनिषदों में तो इसके स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं।

"द्वे ब्राह्मणी वेदितव्ये परमपदं, तत्र परं, सत्यं ज्ञान अनन्तरं बह्म।" इत्यादि वेद वाक्यों द्वारा वैदिक ऋषियों ने वहां अथवा अनन्त ब्रह्म के नाम से जिस तत्त्व का निर्देश किया है उसी को हम निर्वाण अथवा मुक्तावस्था कहते हैं। यही सिद्ध अवस्था है। जीवन पाने का सार है। आत्मा इस रूप में परमात्मा बन जाती है। जहां बंधन टूटते हैं वहां जीव ब्रह्मज्ञानी बन जाता है। केवलज्ञानी केवलज्ञान के बल से ४ कर्मों को तोड़ता है। ४ कर्म उसके मरण के समय छूटते हैं। शरीर का जन्म-मरण समाप्त हो जाता है।"

इस प्रकार प्रभास को मोक्ष तत्त्व के प्रति श्रद्धा हो गई। उसने समाधान पाते ही प्रभु महावीर से प्रव्रज्या स्वीकार कर ली। इस प्रकार मध्यम पावा की इस धर्मसभा में एक ही दिन ४,४११ ब्राह्मणों ने निर्ग्रंथ प्रव्रज्या को स्वीकार कर देवाधिदेव प्रभु महावीर के द्वारा प्रतिपादित श्रमण धर्म को स्वीकार किया।

दिगम्बर जैन परम्परा अनुसार इन्द्रभूति की दीक्षा

दिगम्बर जैन शास्त्रों में गणधर इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणों का वैसा प्रकरण नहीं मिलता, जैसा श्वेताम्बर परम्परा में मिलता है। वहां एक दूसरी तरह की घटना का वर्णन मिलता है।

ऋजुबालुका नदी के तट पर केवलज्ञान प्राप्त कर प्रभु महावीर ६६ दिन मौन रहे। उनके सात प्रतिहार्य तो प्रकट हो गए, पर आठवां दिव्य ध्वनि वाला प्रतिहार्य प्रकट नहीं हो रहा था। प्रभु महावीर घूमते-घूमते केवलज्ञानावस्था में राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर पधारे। उधर इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से जाना कि प्रभु महावीर की दिव्य ध्वनि क्यों प्रकट नहीं हो रही है? उसका कारण यह था कि अभी तक जिनधर्म सुनने वाला कोई सुपात्र पैदा नहीं हुआ था।

इन्द्र ने वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाया और इन्द्रभूति की पाठशाला में आ गया। उसने इन्द्रभूति से पूछा- "ब्राह्मण! मेरे गुरू ने मुझे एक गाथा सिखाई है उसका मैं अर्थ समझ नहीं पा रहा। आपकी प्रतिष्ठा सुनकर आया हूं। कृपया मुझे इस गाथा का अर्थ बता दें।"

इन्द्रभूति गौतम ने मायाधारी इन्द्र से कहा- "मैं आपके हर प्रश्न का उत्तर दे सकता हूं, अगर आप मेरे शिष्य बन जाएं।"

इन्द्र तो चाहता यही था। वह किसी न किसी बहाने इन्द्रभूति को प्रभु महावीर के चरणों में दीक्षित कराना चाहता था। इन्द्रभूति ज्ञान के अहंकार में डूबा ब्राह्मण था।

इन्द्र ने कहा- "शिष्य! बोलो क्या गाथा है? आपको अगर मैंने अर्थ बता दिया, तो क्या मेरे शिष्य बनोगे?"

मायाधारी इन्द्र ने कहा- "हां! अवश्य बनूंगा।"

मायाधारी इन्द्र ने कहा- "मेरे गुरू अभी मौन में हैं इसलिए आपको कष्ट दे रहा हूं। गाथा इस प्रकार है-

"पंचेव अत्थिकाया, छज्जीवणकाया महव्वया पंच।
अट्ठम पवयणमाला सहेउओ वंध मोक्खो यं।"

इन्द्रभूति इस गाथा को सुनते ही असंमजस में पड़ गए। ये पांच अस्तिकाय, षट्जीवनिकाय, महाव्रत, आठ प्रवचन माता कौन-कौन सी हैं?''

इन्द्रभूति ने चालाकी से काम लेते हुए कहा- ''तुम मुझे अपने गुरू के पास ले चलो। मैं उन्हीं के सामने तुम्हें इस गाथा का अर्थ समझाऊंगा।''

इन्द्र तो यही चाहता था कि किसी प्रकार से यह अहंकारी ब्राह्मण अपने ५०० शिष्यों सहित प्रभु महावीर के समवसरण में पहुंचे। यहां समवसरण के दिव्य प्रभाव से उसके मन की शंका समाप्त हो गई। वह प्रभु महावीर का शिष्य बन गया। उसके विद्यार्थी शिष्यों ने भी उसका अनुकरण किया। दीक्षा लेते ही उसे चार ज्ञान व आठ ऋद्धियां प्राप्त हो गईं।

दिगम्बर परम्परा में ग्यारह गणधरों का प्रभु महावीर का शिष्य बनने के पीछे इन्द्र की प्रेरणा है। जबकि श्वेताम्बर जैन परम्परा में पावापुरी के विशालतम यज्ञ में यह पुरोहित वर्ग एकत्रित होता है। वहां महासेन चैत्य में ये ब्राह्मण दीक्षा लेते हैं। प्रभु महावीर ने ग्यारह गणधरों को नौ गणों का प्रमुख बनाया। प्रभु महावीर के साधु संघरूप के गण को धारण करने वाले गणधर कहलाए। इन सबका निर्वाण राजगृही में हुआ। ग्यारह गणधरों में गणधर इन्द्रभूति व गणधर सुधर्मा को छोड़ सब प्रभु महावीर के जीवनकाल में मोक्ष पधार गए।

इधर प्रभु महावीर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। उधर देव-देवियों का आगमन धरती पर होने लगा। कुछ मित्र देवों ने चन्दना को प्रभु महावीर के केवलज्ञान की सूचना दी। वह भी राज्य परिवार के साथ पावापुरी पहुंच गई। सो इस तरह प्रभु महावीर ने साधु-साध्वी, श्रावक व श्राविकारूपी चतुर्मुखी तीर्थ की स्थापना की। चन्दनबाला को साध्वियों की प्रमुखा बनाया गया। इस प्रकार एक दासी रूप में बिकी नारी को धर्म प्रमुखा बनने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रभु महावीर के प्रमुख श्रावकों में आनन्द प्रमुख थे। श्राविकाओं में रेवती, सुलसा प्रमुख श्राविकाएं थीं।

nn

सन्दर्भ स्थल सूची

° श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में आगमों की संख्या 45 मानी गई है, जबकि श्वेताम्बर स्थानकवासी एवं तेरापंथ सम्प्रदाय में आगमों की संख्या 32 है।

१. महावीर चरियं ७/गा. ४४, पृ. २५१
२. चउपन्न महापुरिस चरियं, पृ. २९९-३०३
३. यहां आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि ने विशेषावश्यक भाष्य को गणधरवाद का आधार बनाया है। पर मुनि कल्याणविजय जी ने आवश्यक निर्युक्ति को आधार बनाया है। हम उसी आधार पर इस चर्चा का उल्लेख कर रहे हैं।
४. यह वेद वाक्य आवश्यक टीका से लिया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में यह वाक्य उपलब्ध होता है- ''विज्ञानधन ऐवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय नान्देवातु विनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्तीववे क्रीवीति होवाच।''
५. ऐसा मिलता-जुलता वाक्य बृहदारण्यक १४-४-५५१ में मिलता नहीं था। एक विज्ञानमय पुरूष। प्रस्तुत संदर्भ आवश्यक टीका से लिया गया है।
६. विशेषावश्यक भाष्य १६१०

७. विशेषावश्यक भाष्य १६१४
८. विशेषावश्यक भाष्य १६५४
९. विशेषावश्यक भाष्य १६५९
१०. विशेषावश्यक भाष्य १६६०
११. विशेषावश्यक भाष्य १६७१
१२. विशेषावश्यक भाष्य १६५०
१३. विशेषावश्यक भाष्य १६५२
१४. विशेषावश्यक भाष्य १६५३
१५. विशेषावश्यक भाष्य १६५४
१६. विशेषावश्यक भाष्य १७५०-१७५८
१७. विशेषावश्यक भाष्य १७७०-१७७५
१८. इस श्रुति वाक्य का भाव सांख्यकारिका पृ.६२ के भाव से मिलता जुलता है-
"तस्मात्र वध्यते नाभि मुच्यते नाभि संसरति क्वचित् संसरति क्वचित् संसरति बध्यते मुच्यते व नानाश्रया प्रकृति।"
१९. यह वाक्य ऋग्वेद संहिता ८/४८/३ तथा अथर्ववेद उपनिषद् में मिलता है।
२०. विशेषावश्यक भाष्य १९०५-१९१०
२१. विशेषावश्यक भाष्य १९४९-१९५८
२२. यह वाक्य आवश्यकपूर्ति से लिया गया है।
२३. **आवश्यक टीका में उक्त वाक्य है। तैत्तिरीयोपनिषद् १८२ में सत्यं ज्ञान मनंतब्रह्म प्राप्त होता है।**

तीर्थ स्थापना

जब कोई भव्य जीव तीर्थंकर बनता है, तब उसको अष्ट प्रातिहार्य, ३४ अतिशय, देवों द्वारा रचित समवसरण, ६४ इन्द्रों की सेवा हर समय प्राप्त होती है। इस प्रकार उस दिन वैशाख शुक्ल दशमी का दिन था। मध्यम पावा नगरी के महासेन उद्यान में साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ की स्थापना की।

४,४११ ब्राह्मण मुनि बन चुके थे। आर्या चन्दनबाला तथा सैकड़ों महिलाएं दीक्षित होकर साध्वी संघ में मिली। हजारों श्रावक व श्राविकाओं ने प्रभु महावीर की वाणी को सुनकर आत्म कल्याण का मार्ग चुना।

इस शिष्य-परिवार के साथ प्रभु महावीर राज्यगृह में पधारे। वहां राजा श्रेणिक राज्य करते थे। उनके अनेक रानियां व राजकुमार थे। सबसे छोटी रानी चेलना वैशाली गणराज्य के गणाध्यक्ष चेटक की पुत्री थी। वह श्रमणोपासिका थी। राजा श्रेणिक उस समय तक प्रभु महावीर के भक्त नहीं बने थे। राजकुमारों में प्रमुख महावीर के भक्त राजकुमार अभय थे, जो राजा श्रेणिक के महामंत्री भी थे।

राजगृह का गुणशील चैत्य श्रमणों के आवास के लिए बहुत ही अनुकूल स्थान था। प्रभु महावीर के अधिक वर्षावास यहीं हुए। हजारों जीवों को मोक्ष का संदेश यहां से मिला। प्रभु महावीर के ११ गणधर भी यहां से मोक्ष पधारे। इसी स्थान पर श्वेताम्बर परम्परा अनुसार प्रभु महावीर ने देवों द्वारा निर्मित समवसरण में प्रथम उपदेश दिया।

भगवान महावीर ने फरमाया- "अनादि अनंत संसार में भटकते हुए जीवों को मनुष्यत्व, धर्म श्रवण, सत्य श्रद्धा तथा संयम में पुरुषार्थ करना परम दुर्लभ है। मानव-भव दुर्लभ है। आत्मा की मुक्ति मनुष्य भव में ही होती है, अन्य योनियों में नहीं। देवभव पुण्य फल भोगने का स्थान है। नरक पाप का फल भोगने का स्थान है। तिर्यंच जीव को मोक्ष असम्भव है। मनुष्य को छोड़ तीनों गतियों के जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते।

मोक्ष के लिए देश, काल, जाति, रंग, नस्ल, लिंग का भेद करना मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व ही असली पाप है और अज्ञानता का दूसरा नाम है। मिथ्यात्व को पहचान कर उसे छोड़ो, सम्यक्त्व को ग्रहण करो।

अगर मनुष्य-जन्म कभी शुभ कर्मोदय से मिल भी जाए, तो सच्चा धर्म सुनना परम दुर्लभ है। यह संसार अनार्य, पापी, दुराचारी, अज्ञानियों से भरा पड़ा है। ऐसे में धर्म का उपदेश सुनना बहुत दुर्लभ है। अनार्य स्वयं को आर्य बताते हैं। दुर्जन सज्जन बने फिरते हैं। अनार्य तो धर्म सुन ही नहीं सकते, सभी आर्य भी धर्म सुनने के योग्य नहीं होते। इसका कारण है- प्रमाद, लोभ, भय, अहंकार, अज्ञान और मोह।

अन्तराय कर्म क्षीण हों, दर्शनावरणीय व ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम हों तो जीव धर्म सुन सकता है। धर्म सुन भी ले, तो सत्य धर्म पर श्रद्धा होना बहुत कठिन है। मिथ्या अहंकार तथा राग-द्वेष मनुष्य की श्रद्धा समाप्त करने में प्रमुख सहायक है। दूसरे मतों के बहकावे में आकर, चमत्कारों को

देखकर-सुनकर अपने सत्य धर्म को छोड़कर जीव अज्ञानता में ज्ञानीपन मानता है।

जिनका भव भ्रमण कम रह गया है अंतरंग तेज खुल गए हैं और आत्मिक सुख-प्राप्ति का समय मर्यादित हो गया है, उन्हीं योग्य प्राणियों के हृदय पर सत्य धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा उमड़ती है। इतना कुछ प्राप्त हो जाने पर उस धर्म पर चलना परम दुर्लभ है। कई व्यक्ति सत्य को जानते हैं उस पर श्रद्धा भी करते हैं। उस मार्ग पर चलना उनके वश में नहीं होता। वे संयम मार्ग पर बढ़ने का प्रयत्न नहीं करते।

प्रभु महावीर ने अपने प्रवचन में साधु धर्म व श्रावक धर्म का वर्णन किया। हम भी इसे संक्षेप में दे रहे हैं-

साधु धर्म

प्रभु महावीर ने कहा- ''जब तक तुम संयममार्ग की ओर अग्रसर न होंगे तब तक कर्मक्षय कर मुक्ति के निकट नहीं पहुंचोगे तथा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक कष्टों से छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकते।

संयम-पथ पर चलने से पहले सर्वप्रथम वीतराग अरिहंत सिद्ध पर श्रद्धा, निर्ग्रंथ गुरू की उपासना व उनके द्वारा बताए धर्म पर चलना जरूरी है।

फिर ही पांच महाव्रतों की साधना संभव है। इन पांच महाव्रतों का मन, वचन, काया के तीन योग और तीन करण से पालन करना ही साधु धर्म है। ये पांच महाव्रत इस प्रकार हैं-

(१) प्राणातिपात विरमण- सूक्ष्म-स्थूल सभी प्रकार की हिंसा न स्वयं करना, न कराना, न कराने का अनुमोदन करना।

(२) मृषावाद विरमण- मन, वचन, काय से असत्य भाषण करने, कराने व अनुमोदन का त्याग।

(३) अदत्तादान विरमण- मन, वचन, काया से पराई वस्तु ग्रहण करने, कराने व अनुमोदन का त्याग।

(४) मैथुन विरमण- मन, वचन, काया से सर्व प्रकार के मैथुन सेवन करने, कराने व अनुमोदन का त्याग।

(५) परिग्रह विरमण- मन, वचन, काया से धन धान्यादि आदि राग-द्वेषादि आभ्यन्तरिक परिग्रह ग्रहण करने, कराने और अनुमोदन का त्याग।

इन महाव्रतों का पालन करने वाला श्रमण सात-आठ भवों में मोक्षरूपी लक्ष्मी का स्वामी बनता है। भव बन्धन से मुक्त हो जाता है। साधु जीवन में पांच महाव्रतों के अतिरिक्त तीन गुप्तियों, तथा पांच समितियों का पालन जरूरी है।

गृहस्थ धर्म

सभी लोग संयममार्ग छोड़कर साधु बन जाएं, यह असंभव है। जो लोग साधु नहीं बन सकते, जो आत्मा से सर्वविरति अंगीकार नहीं कर सकते, वह देशविरति धर्म द्वारा अपनी आत्मा की विशुद्धि कर सकते हैं। विरत संयमी 'श्राद्ध' अथवा श्रमणोपासक कहलाता है। इसे आंशिक रूप से देशविरति धर्म का पालन करना होता है। इस मार्ग पर घर में रहकर चला जा सकता है। सामाजिक व्यवहार चलाया जा सकता है। यह आदर्श आचार-संहिता का आधार है। इसका वर्णन इस प्रकार कर सकते हैं-

(१) स्थूल प्राणातिपात विरमण- त्रस (चलते फिरते) निरपराधी जीवों की हिंसा नहीं करना।

(२) स्थूल मृषावाद विरमण- मोटे झूठ का त्याग।

(३) स्थूल अदत्तादान विरमण- जिस वस्तु के ग्रहण करने से व्यक्ति चोर कहलाए, ऐसी मोटी चोरी का त्याग।

(४) स्व-स्त्री संतोष, पर स्त्री विरमण- पर स्त्री गमन का त्याग ग्रहण कर स्व स्त्री में ब्रह्मचर्य की मर्यादा रखना।

(५) परिग्रह परिमाण- चल व अचल सम्पत्ति सभी प्रकार की सीमा निश्चित करना।

(६) दिक् परिमाण- सभी दिशाओं में आने-जाने की सीमा का निर्धारण करना।

(७) भोगोपभोग परिमाण- खान-पान, मौज, शौक व औद्योगिक प्रवृत्तियों की सीमा निर्धारित करना।

(८) अनर्थदण्ड विरमण- निरर्थक प्रवृत्तियों का त्याग।

(९) सामायिक- प्रतिदिन कम से कम मुहूर्त पर्यन्त सांसारिक प्रवृत्तियों को छोड़कर समभाव निवृत्ति मार्ग में स्थिर होना।

(१०) देशावकाशिक- स्वीकृत मर्यादा को कम करना।

(११) पौषधोपवास- अष्टमी, चतुर्दशी आदि दिनों में सांसारिक प्रवृत्तियों को छोड़कर आठ प्रहर धार्मिक जीवन बिताना।

(१२) अतिथि संविभाग- अतिथि को आहार देना। उसका हर प्रकार से ध्यान रखना। अतिथि में महाव्रती व अणुव्रती प्रमुख हैं।

भगवान प्रभु महावीर ने इन द्वाद्वश व्रतों का निरूपण किया। फिर जीव-अजीव आदि नवतत्त्व, षट्द्रव्य व लेश्या का निरूपण किया। उनका उपदेश देश, काल, जाति, रंग, नस्ल की सीमा से परे समता का उपदेश था।

जो मनुष्य साधु बनने में असमर्थ हैं वह अपनी शारीरिक व्यवस्थानुसार इन नियमों पर चलते हुए आत्म शुद्धि कर सकता है और मोक्ष के करीब पहुंच सकता है।

भगवान महावीर ने लोगों की आम भाषा में उपदेश दिया था। भगवान महावीर की देशना का बहुत प्रभाव पड़ा। बहुत से लोगों ने गृहस्थ व साधु धर्म अंगीकार किया, जिनका वर्णन हम तीर्थंकर जीवन में करेंगे।

खण्ड आकलन

इस खण्ड का आधार हमने गणी कल्याणविजय जी कृत ''श्रमण भगवान महावीर'' को बनाया है। कथाएं आगमों में उपलब्ध हैं। उन्होंने भगवान महावीर के ३० साल के विवरण को चातुर्मास के हिसाब से भौगोलिक स्थिति के अनुसार तय किया है। उनके इस आकलन को भारतीय व विदेशी सभी लेखकों ने स्वीकार किया है। किसी आगम या ग्रंथ में इन ३० वर्षों का वर्णन व्यवस्थित रूप से नहीं मिलता।

मुनि कल्याणविजय जी का परिश्रम बहुत ही सार्थक है। उनके इस अनुसंधान को काफी सीमा तक अधिकांश जैन विद्वानों ने भी स्वीकार किया है।

nn